॥ श्री गोपीजनवल्लभायनमः ॥

श्रीमद्भागवतदशमस्कंधपूर्वार्धजन्मप्रकरणीय

श्री सुबोधिनी हिन्दी भाषानुवाद

मू०—तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

अर्थ-- ब्रह्माजी ने वहां पर (क्षीर सागर पर) जाकर देवताओं के भी देव भगवान् जगन्नाथ, संपूर्ण यज्ञादि के फलों को भोगने वाले पुरुष की पुरुष सूक्त द्वारा स्तुति की ॥२०॥

श्री सुबोधिनी

ब्रह्मा ने वहां जाते ही स्तोत्र द्वारा श्री प्रभु की स्तुति प्रारंभ की यह प्रदर्शित करने के हेतु मूल में " गत्वा " शब्द कहा गया है। वहां जाकर समाधि धारण कर अर्थात् एक चित्त होकर ब्रह्मा ने पुरुष सूक्तद्वारा स्तुति प्रारंभ की है। वे ब्रह्मा स्वयं ही (उस गौरुपा पृथ्वी के दुःख का) प्रतीकार क्यों नहीं कर सके ? ऐसी शंका के निराकरण के लिये ही मूल में " जगन्नाथ " पद कहा गया। जगत् के संपूर्ण प्राणी मात्रों के नाथ वे (क्षीरसागर पर निवास करने वाले परम प्रभु) ही हैं (अतः वेही इसका निराकरण कर सकते हैं ब्रह्मादि नहीं) अब यहां पुनः शंका होती है कि वे प्रभु जगन्नाथ हैं संपूर्ण जगत् के नाथ हैं इससे वे दैत्यों के भी नाथ हुवे तो फिर वे दैत्यों का प्रतीकार क्यों करेंगे ? ऐसी शंका के निराकरणार्थ मूलश्लोक में " देवदेवम् " कहा गया है अर्थात् वे देवताओं के भी देव हैं; अथवा भगवान् देवों के साथ क्रीड़ा करते है अतः वे देवदेव है । परब्रह्म भगवान् प्रजापति के भी प्रजापति, अग्नि के भी अग्नि, एवं सूर्य के भी सूर्य हैं, अतः वे दैत्यों का प्रतीकार अवश्य ही करेंगे।

मर्यादा से भगवान् " जगन्नाथ " हैं किन्तु अभी यहां पर दैत्यों द्वारा अतिक्रम होने से भगवान् उनका पक्ष नहीं ग्रहण करेंगे।

पुनः शंका होती है कि भूमि के रसातल में चले जाने पर भी देवतागण स्वर्ग में आनन्दोपभोग करही सकेगें, एवं देवताओं का अहित भी नहीं होगा ? इस शंका के निराकरणार्थ मूलश्लोक में "वृषाकपिम्,, पद रखा गया है। अर्थात् "वृषः" यज्ञादि रूप धर्म उसके संपूर्ण फल स्वर्गादि सुख को पान करने वाले अर्थात् भगवान् स्वयं सर्व यज्ञों के फलों का उपभोग करने वाले हैं और यदि पृथ्वी रसातल में चली जाय तो यज्ञादिक हो ही नहीं सकते हैं। देवताओं

का देवत्व भी यज्ञफल भोग से ही है। इसलिये भगवान् को " वृषाकपिम् ,, इस विशेषण से विभूषित किया गया है। (इन संपूर्ण कार्यों के हेतु ही श्रीप्रभु ने पृथ्वी का रक्षण किया है)

भगवान् क्षीरसागर पर अदृष्ट एवं असंनिहित (दूर) थे अतः उनकी स्तुति कैसे हो सकती है ?

वह पुरुष भगवान् नारायण अपने हृदय में ही स्थित है। भगवान् नारायण ब्रह्मा के पिता हैं अतः कार्य अवश्य ही होगा यह सूचित करने के हेतु मूल में " पुरुषम् ,, पद स्थापित है।

" पुरुषसूक्तेन " अर्थात् वैदिक मंत्र द्वारा--भगवान् की प्रेरणा द्वारा प्राप्त ऐसे भगवत्प्रिय मंत्र द्वारा स्तुती की गई है। पुरुष सूक्त तेजो मय है। उपस्थान (स्तुति) विद्या से तेजोमय परम प्रभु संतुष्ट होते हैं इसलिये अन्तर्यामि के स्वरुप के धर्म पूर्वक स्तोत्र रचित होने से (पुरुष सूक्त में श्री प्रभु के स्वरुप का वर्णन है) उसी पुरुष सूक्त द्वारा ब्रह्माजी ने स्तुति की है। २०॥

पुनः शंका होती है कि जिन पुरुष की स्तुति की गई है वेही प्रकट होंगे, पुरुषोत्तम नहीं ? इसका निराकरण कहते हुवे ब्रह्मा के अन्तः करण में जो प्रत्युत्तर प्राप्त हुवा वह अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण देवतागण नहीं जान सकते हैं अतः ब्रह्माजी देवताओं क सूचित करते हैं—

मू०—गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे श्रुणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥ २१॥

अर्थ—आकाश में उत्पन्न हुई उस भगवद्वाणी को समाधी में सुनकर ब्रह्माजी देवों से कहने लगे कि—हे देवों! मेरी उस पौरुषेय (भगवान नारायण पुरुष से उत्पन्न हुई) वाणी को सुनों, और जल्दी ही उस कार्य को करो, उसमें विलम्ब मत करो ॥२१॥

श्री सुबोधिनी

समाधिमें जिन भगवान् की भावना की गई है वे भगवान् सलोक है। वहां आकाश में भगवान् द्वारा कहे गये भगवद्वाक्य को ब्रह्मा ने सुना इसमें प्रमाण "वेधा" यह शब्द है। ब्रह्माजी 'वेधा है (वेधा-विधान करने वाले, या धारण करने वाले। ब्रह्माजी स्वयं उन शब्दों को धारण करने वाले हैं) यदि ब्रह्मा वेधा नहीं हो तो वे भगवदाज्ञा बिना विधान ही कैसे कर सकते हैं? देव गण भी ब्रह्मा के ही समान है फिर वे उस भगवद्वाणी को क्यों नहीं सुन सके? उसके निराकरणार्थ मूल में " त्रिदशान्" ऐसा कहा गया है अर्थात् देवता गण त्रिदश तीन दशायें बाल्य; कौमार, युवा, उनसे (देव) युक्त हैं (अतः वे श्रवण नहीं कर सके। परन्तु ब्रह्मा उन दशाओं से रहित थे) ये देवता गण तीनों दशाओं को भोगने वाले हैं इसीलिये भगवान् ने उनको जन्म लेने की आज्ञा प्रदान की है।

अकस्मात् कुछ क्षण ठहर कर बादमें कुछ विचार कर ब्रह्माने भगवदाज्ञा कही है। यह मूल श्लोक में स्थित "ह" शब्द द्वारा प्रकट होता है। अपनी स्वतः की वाणी नहीं है अपितु श्री परम प्रभु की वाणी है यह सूचित करने के हेतु ब्रह्माने "पौरुषीम्" पद कहा है। वह

पौरुषेय वाणी अखण्डित है, दोहन करने के योग्य है तथा मेरे द्वारा कही जा रही है। इस प्रकार कह कर ब्रह्मा उसकी (वाणी की) प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं। ब्रह्मा का वाक्य कभी बदलता नहीं है। वस्तुतः तुमको उन नारायण पुरुष द्वारा कही गई वाणी ही मेरे द्वारा सुनाई जायगी अतः हे देवों! प्रथम भगवदाज्ञा श्रवण करो; पहले सुनकर पश्चात् उसके अनुसार कार्य करो इसमें किंचित् मात्र भी विलम्ब मत करो। इस प्रकार पहले सामग्री सम्पादन के बारे में कहकर बाद में आज्ञा को कहते हैं।

आगे अंशावतार के बारे में कहा जायगा। (देवों को अंशावतार से पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा दी गई है) यहां शंका होती है कि देवों का अंशावतार से पृथ्वी पर जन्म होने में देवों को वहां (स्वर्ग में) मरना आवश्यक हो जाता है इस शंका के निवारण करने के हेतु मूल श्लोक में देवों को " अमरा " इस पद से संबोधित किया गया है अर्थात् देव गण अमर हैं। " शृणुत" सुनो इस पद का प्रयोग देवों को सावधान करने के हेतु किया गया है।

मूल श्लोकस्थित " पुनः " शब्द यह सूचित करता है कि पहले भी रामावतार में रावण से डरे हुवे देवता गण अंश रूप से अवतरित होने के लिये ब्रह्मा द्वारा आदेश किये गये थे उसी प्रकार इस समय भी आदेश किये जा रहे हैं।

पहले देवों ने जन्म लेने में बिलम्ब किया था अतः मूल में " आशु " (जल्दी) कहा गया है। पुनः उसी प्रकार अन्श-रूप से अवतार ग्रहण करना चाहिये; ऐसा ब्रह्मा का तात्पर्य है। पहले जिस देवता ने जितने अंश में जन्म लिया है उतने ही अंश में अभी भी जन्म ग्रहण किया जाय। पहले दशरथ का जन्म जल्दी नहीं होने के कारण श्री प्रभु को प्रकट होने में साठ हजार वर्ष का विलम्ब हुवा था; अतः इस समय देरी मत करो एवं जल्दी ही अवतार ग्रहण करो. ऐसी ब्रह्माकी आज्ञा है ॥ २१ ॥

अब देवों के हृदय में शंका उत्पन्न हुई कि—हे ब्रह्मन्! पहले रामावतार के समय में हम लोग वानर रूप में प्रकट हुए थे, उस समय हमें बहुत ही दुःख प्राप्त हुवा था; अतः हे ब्रह्मन्! इस समय आपने हमारे लिये भगवान् नारायण पुरुष से क्या निवेदन किया है तथा उन्होंने आपको क्या आज्ञा प्रदान की है? इस प्रकार की शंका को दूर करने के हेतु ब्रह्मा कहते हैं कि—

मू०—पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्याक्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥

अर्थ—परम प्रभु परमेश्वर ने पहले ही पृथ्वी के दुःख रूपी ज्वर को जान लिया है; अतः वे ईश्वरेश्वर प्रभु अपनी कालशक्ति से पृथ्वी का भार हरण करते हुवे पृथ्वी पर जब तक विचरते रहें तब तक के लिये तुम लोग भी अपने अपने अंशों द्वारा यदुकुलमें जन्म ग्रहण करो॥२२॥

श्री सुबोधिनी

पृथ्वी के द्वारा जब अपना दुःख कहा गया है उसके पूर्व ही भगवान् ने उसके दुःख

रूपी ज्वर को जान लिया था। प्रभु पृथ्वी पति हैं; एवं पुरुष अपनी भार्या को स्पर्श करता ही है तथा ज्वर स्पर्श मात्र से ही जाना जाता है; इसलिये हमारे द्वारा की गई सूचना की भगवान् को अपेक्षा नहीं है; और इसीलिये स्वयं भगवान् ने मेरे कहने के पूर्व ही आज्ञा की है। भगवान् स्वयं भी अवतार लेंगे अतः उनके पहले ही तुम लोगों को भी भगवान् के जन्म ग्रहण स्थान के समीप में ही जन्म लेना चाहिये।

भगवान् को तुम लोगों की आवश्यकता है अतः अंश रूप से शीघ्र ही जन्म ग्रहण करना चाहिये; तुम लोग भगवान् के अंश हो; हस्त एवं पाद के समान सेवक हो; एवं प्रभु सर्वत्र अपने सेवकों सहित जाते हैं। (अतः तुम लोग शीघ्र ही जन्म ग्रहण करो) पहले जिस कुल में तुमने जन्म लिया था; उससे इसमें विलक्षणता है तुम्हें यदुवंश में जन्म लेना है एवं श्री प्रभु भी यदुवंश में ही अवतरित होंगे। तुम लोग समीप में ही जन्म ग्रहण करो ऐसी आज्ञा है। यह जन्म ग्रहण सेवा के लिये है अतः जब तक श्री प्रभु भूतल पर स्थित रहें तब तक तुम्हारी भी स्थिति आवश्यक है। (वहां कितने समय पर्यन्त रहना? इस प्रकार के देवों की शंका का निवारण करने के हेतु पूर्व वाक्य कहा गया है) हमेशा समीप में ही रहना आवश्यक है। तुम्हारा जन्म पुत्र पौत्रादि रूप से होगा। भगवान् की स्थिति कहां तक रहेगी? इस शंका का निवारण करने के हेतु कहा है कि—जब तक भगवान् अपनी काल शक्ति द्वारा दुष्टों का नाश करते हुवे विचरते रहेंगे; तब तक उनकी स्थिति रहेगी एवं साथमें तुम्हारी भी। पुनः शंका हो कि इस प्रकार भी कहां तक होता रहेगा? इस शंका के निवारणार्थ मूल श्लोक में कहा है कि—भगवान् ईश्वरेश्वर है। ईश्वर स्वच्छन्दचारी हैं; उन संपूर्ण कालादिका भी जो ईश्वर है उसके समय का ज्ञान कैसे हो सकता है कि वह ईश्वर इतने समय पर्यन्त स्थित रहेगा।

इस प्रकार नियत भोगों से युक्त देवताओं की शंका का निराकरण किया गया है।

अब पुनः कहते हैं कि—

दैत्यगण हम लोगों को मार डालेंगे ऐसी शंका तुम लोग मत करो कारण कि सर्व समर्थ प्रभु अपनी कालशक्ति द्वारा ही पृथ्वी के भार को दूर करेंगे।

"भगवान् यतः ततः घूमते फिरेंगें" यह इसलिये कहा गया है कि भाररुप दैत्यगण एक स्थान पर स्थित नहीं रहते हैं; अतः प्रभु इतःततः विचरण करेंगे; इस प्रकार कितने समय पर्यंत होता रहेगा यह तो मैं भी नहीं जानता हूँ। प्रभु प्रकट हुवे हैं यह हम कैसे जानेंगे? इस शंका के उत्तर में कहते है कि—प्रभु प्रकट होने पर अज्ञात (छिपे हुवे) नहीं रहेंगे, वे अलौकिक कार्य करेंगे अतः ज्ञात हो सकेंगे ॥ २२ ॥

फिर भी कहां जन्म लेवेंगे? इस शंका के निवारणार्थ कहते हैं कि—

मू.—वसुदेव गृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

अर्थ—साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वसुदेव के गृह में जन्म ग्रहण करेंगे; अतः हे देव स्त्रियों! तुम उनके प्रिय कार्य के हेतु उत्पन्न होवो ॥ २३ ॥

श्री सुबोधिनी

मूलश्लोक में " साक्षाद्भगवान् ,, इस प्रकार के कथन का यह प्रयोजन है कि भगवान् चक्रादि रुप से अथवा सत्वगुण के व्यवधान से वा अंशादि रुप से प्रकट नही होगें। अपितु पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरुप का ही प्रादुर्भाव होगा। केवल " भगवत् ,, शब्द द्वारा गौण का भी बोध हो सकता है किन्तु मूलश्लोक में आगे " पुरुष परः ,, (पर पुरुष=पुरुषोत्तम) इस प्रकार कहा है। ब्रह्माण्ड एवं अक्षर ब्रह्म से भी पर पुरुष का प्रादुर्भाव है। और वही पर पुरुष पुरुषोत्तम है एवं उनका ही जन्म होगा।

अतः उनके प्रिय कार्य के हेतु उनकी सेवा करने के हेतु देवताओं की स्त्रियोंको अच्छी प्रकार संपूर्ण सौन्दर्यादि गुणों को धारण करके उनके योग्य स्थानों पर उत्पन्न होना चाहिये।

सुरस्त्रियां अप्सराएँ है; वे लक्ष्मीजी के साथ ही समुद्र से उत्पन्न हुई है। भगवान् ने इन को भोगी नही है, अतः अपना जन्म सफल करने के हेतु उनका (अप्सराओं का) अवतरण है। श्रीप्रभु के प्रिय कार्य के हेतु उत्पन्न होवो। इस वाक्य द्वारा यह स्पष्ट है कि देवस्त्रियां ही जन्म ग्रहण करेगी नही कि देवगण स्त्री रुप में प्रकट होगें। २३॥

भगवान् के अवतार के पूर्व ही सेवादि में सावधानता रखने के हेतु भगवच्छय्या रुप (भगवान् की शय्या रुप) शेष का संकर्षण (संकर्षण व्यूह) सहित-अवतार होगा । ऐसा कहते है—

मू०—वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥

अर्थ— वासुदेव भगवान् की कलारुप, सहस्र वदन (हजारों मुखवाले) स्वराट् (स्वयं प्रकाशित होनेवाले) ऐसे श्री अनन्त बलदेवजी श्री हरि के प्रिय कार्य के लिये पहले ही प्रकट होगें ॥२४॥

कारिकाः—

सात्विकेषु तु कल्पेषु यः शेते सलिले हरिः ।
वासुदेवः स विज्ञेयस्तस्यांशोऽनन्त उच्यते ॥१॥
कालात्मा च स विज्ञेयो भूभारहरणे प्रभुः ।
तत्र सुप्तो हरिश्चापि तदाविष्टो भविष्यति ॥२॥
अतोनुशयनं विष्णोर्बलभद्रेण नात्मनः ।
एकवत् मोच्यते कृष्णो द्विवल्लोकैः प्रतीयते ॥३॥
देवक्यां शयनस्यैव सम्भवो न हरेः स्मृतः ।
रोहिण्यामपरस्येति कर्षणान्नैव हीनता ॥४॥

कारिकार्थ—

सात्विक कल्प में जो श्री हरि जल में अनुशयन करते है; वे वासुदेव है एवं उनका ही अंश अनन्त (श्री बलराम हैं। (१) वे संकर्षण कालात्मा होने से पृथ्वी का भार हरण करने में समर्थ हैं; उन पर (शेष शय्यापर) शयन करनेवाले श्रीहरि भी उनमें आविष्ट होंगे। (२) श्री विष्णु का ही बलभद्र में अनुशय हैं नहीं कि पूर्ण पुरुषोत्तम का है। कृष्ण एक ही है लेकिन लौकिक दृष्टि से वे दो रूप के समान दिखाई देते हैं (३) (श्री बलराम में विष्णु का आवेश है एवं श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म प्रथक् है इस प्रकार के कथन में दो स्वरूप दिखाई देते हैं किन्तु वे एक ही है कारण कि पूर्ण पुरुषोत्तम अंशी है एवं यह सब अंश रूप है, अंशी के ही अंश है अतः एक है लौकिक दृष्टि में दो रूप दिखाई देते है)

श्रीदेवकी में शय्या रूप, धामरूप श्री शेष की ही स्थिति है नहीं कि वासुदेवांश की स्थिती वासुदेवांश की स्थिति श्री रोहिणी में है; तथा जब देवकी के गर्भ में से रोहिणी में माया द्वाराकर्षण करके गर्भ स्थापना हुई उस समय वासुदेवांश का उस गर्भ में अभाव था किन्तु उस गर्भ का कर्षण हुआ है अतः उसे हीन मान लेना यह अनुचित है। (४)

श्री सुबोधिनी—

संकर्षण अन्य से भिन्न है यह प्रकट करने के हेतु मूल श्लोक में "वासुदेव" पद कहा गया है। संकर्षण—वासुदेव की कला धर्म रूप है और वह भी शय्यारूप अनन्त होने से कालात्मा है। वे प्रभु अपने आश्रय सहित शयन करते है; वहां पर भगवान् का अधिदैविक रूप भी स्थित है यह सूचित करने के हेतु मूल श्लोक में "सहस्रवदन" पद कहा है। संकर्षण ही सहस्रवदन है एवं वेदात्मा है; केवल शेषसे संकर्षण रूप उत्तम है यह सूचित करने के हेतु"स्वराट्" पद कहा गया है कारण कि वेसंकर्षण रूप से स्वर्ग में भी शोभित होते है जो संकर्षण रूप "सितकृष्णकेश" है वे प्रथम हीं व्रज में उत्पन्न होंगें।

यहां शंका होती है कि यदि संकर्षण रूप के प्रादुर्भाव से ही संपूर्ण कार्य सिद्ध हो जाता है तो श्री प्रभु के अवतार ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है? उन बलदेवजी का प्राकट्य देव रूप से है; अतः वे अधिक कार्य नहीं कर सकेगें। (भूतल पर देवों का आगमन केवल भगवल्लीला में साक्षी रहें इसी लिये है) फिर उनके शेषादिके अवतार का क्या प्रयोजन है? इसके लिये मूल श्लोक में " प्रियचिकीर्षया" पद स्थित है अर्थात् उनका यहां (भूतलपर) आगमन केवल श्री हरि के प्रिय करने के हेतु ही है। वे भगवान् संपूर्ण प्राणी मात्रों के दुःख हर्ता है। ये देवगण दैत्यों को सुख देने में अर्थात् मोक्ष प्रदान करने में तथा पृथ्वी का भार हरण करने में भगवान् के सहायक होकर उनका प्रिय कार्य करेगें ॥ २४ ॥

इस प्रकार संपूर्ण सामग्री सहित श्री हरि के प्रादुर्भाव से संपूर्ण प्राणी मात्रों का मोक्ष हो जायगा? इस शंका के निवारणार्थ कहते है—

मू०—विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सा भविष्यति ॥ २५ ॥

अर्थ—जिस माया के द्वारा संपूर्ण जगत् मोहित हो रहा है ऐसी विष्णु की भगवती माया को भी आज्ञा प्रदान की गई है अतः वह भी अंशरूप से कार्य के लिये प्रगट होगी ॥ २५॥

श्री सुबोधिनी—

जो भगवान् विष्णु माया के उद्घाटन से अवतार ग्रहण करेगें; उनके साथ उन्ही की अंश भूत माया भी कार्य के लिये प्रकट होगी। वह माया भी भगवती है; षड् ऐश्वर्यादि गुणों (ऐश्वर्य वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य) से युक्त है। इस में भगवान् की कृपा ही मुख्य कारण है। एवं वह माया अपने स्थान का (व्यापि वैकुन्ठ) परित्याग करके यहां प्रकट होगी इस में भी दोष नहीं है कारण कि यहां पर रहकर भी वह (माया) भगवत्कार्य ही करेगी एवं सब लोगों की मुक्ति भी नहीं हो सकेगी कारण कि उस माया द्वारा संपूर्ण जगत् संमोहित है भगवान् ने उसको आज्ञा प्रदान की है अतः उसका आगमन निश्चित ही है। इस प्रकार संपूर्ण जगत् को व्यामोहन करने वाली माया भगवदाज्ञा से अवतरित होगी; तो तुम लोग किस गिन्ती में हो? तुम लोगों को गर्व नहीं करना चाहिये।

यशोदामे स्तन्य; (यशोदा मे दुग्धरूप) गर्भसंकर्षण, (देवकी के सप्तम गर्भ का संकर्षण करके रोहिणी में स्थापित करना) कंसादिको को मोहन करना; तथा वसुदेवादिकों को छुड़ाना ये संपूर्ण कार्य माया द्वारा होगें ॥ २५ ॥

इस प्रकार सबको आदेश करके ब्रह्मा वहां से चले गये—

श्री शुक उवाच—

मू. —इत्यादिश्यामरगणान् प्रजापतिपतिर्विभुः।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥२६॥

अर्थ—श्री शुकदेवजी कहते है—इस प्रकार प्रजापतियों के भी पति ब्रह्मा देवगणों को आदेश करके और वाणी द्वारा पृथ्वी की सान्त्वना करके अपने परम धाम गये ॥२६॥

—श्री सुबोधिनी—

देव अनेक प्रकार हैं, एवं वे संपूर्ण देव अपने नेता की आज्ञा पालन करने वाले है अतः ब्रह्मा ने उन देवोंके गणोंके नेताओं को आज्ञा प्रदान की है यह मूलश्लोक स्थित "अमरगणान्,, (देवताओं के नेताओं को) द्वारा स्पष्ट है।

यहां शंका होती है कि इनसंपूर्ण देवादि का अवतार हुवा किन्तु ब्रह्मा का अवतरण क्यों नही हुवा? अतः कहते है कि-- ब्रह्मा प्रजापतियों के भी पति है, वे प्रजापतिओं के नियन्ता है, यदि उनका अवतरण होजाय तो प्रजापतियों पर नियन्त्रण कौन करे? एवं प्रजापतियों पर नियन्त्रण नही होने से सृष्टि ही नही होवे अतः उनका अवतरण नही हुवा है। साक्षात् भगवान् ने देवों को आज्ञा प्रदान नही की है अतः वे पृथ्वी पर उत्पन्न नही होगे

ऐसी शंका भी निर्मूल है कारण कि मूलश्लोक में ब्रह्मा को " विभु ,, (व्यापक या महत्ता युक्त) कहा है; ब्रह्मा स्वयं भी देवों को आज्ञा देने में समर्थ हैं

इस उपर्युक्त संपूर्ण वृत्तान्त को सुन कर ही भूमि कृतार्थ होगई तथापि ब्रह्मा वाणी द्वारा पृथ्वी को सान्त्वना देकर सत्यलोक नामक स्वधाम को गये। " गीर्भिः ,, (वाणी द्वारा) इस पद द्वारा यह जाना जाता है कि ब्रह्माने भूमि को बहुत से प्रशंसात्मक वाक्य कहे हैं। " पहले भूमि पर भगवान् का आगमन नहीं था एवं अब श्री प्रभु की आगमन होगा, यह भूमि के महाभाग्य है ,, इस प्रकार ब्रह्मा ने पृथ्वी का अभिनन्दन किया है ॥२६॥

इस प्रकार भूमिका सान्त्वन कहकर आगे देवकी के सान्त्वन करने के हेतु प्रथम दश श्लोकों द्वारा उनके दुःख प्राप्त होने का कारण एवं प्रकार कहते हैं—

मू०—शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ।
माथुरान् शूरसेनाँश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥२७॥

अर्थ— पहले यदुओं के पति राजा शूरसेन मथुरा पुरी में रहते हुवे माथुर एवं शूरसेन देशों का उपभोग करते थे ॥२७॥

श्री सुबोधिनी

सहस्रार्जुन के पुत्रों में से जो पांच पुत्र शेष रहे थे उनमें दूसरा पुत्र यह शूरसेन था। यादवों के राज्य का निवारण ययाति ने किया था उसके बाद भगवत्कृपा से ही उसका (यदुका) राज्य चलता था, जो महान् भगवदंश होता वही राजा हो जाता था इस प्रकार भगवत्कृपा से महान् भगवदंश युक्त सहस्रार्जुन राजा हुवा एवं वह जब जीवित था तभी उसने शूरसेन को माथुर एवं शूरसेन इस प्रकार दो प्रान्त दे दिये थे तथा उसका ज्येष्ठ पुत्र माहिष्मती नगरी में ही रहता था।

कारिकाः--

सर्वोत्कर्षे तु यद्दुःखं तद्दुःखं स्वल्पके स्मृतम् ।
देशतः कालतश्चैव अवस्थातः स्वतोन्यतः॥१।
द्रव्यतो मानतश्चेति सप्तैव सुखदाः स्मृताः ।
तथाभूता शब्दवशात् प्राप्तादुःखं तदा पतिः ॥२॥
प्रतिक्रियां समारेभे नवभिश्च प्रतिक्रिया ॥२३॥

कारिकार्थः--

देश काल अवस्थादि से भगवान् के द्वारा माता के सर्वोत्कर्ष में (देव की जी को) जो दुःख उत्पन्न हुवा है वह दुःख स्वल्प निमित्त से ही शीघ्र विना परिश्रम भगवान् दूर कर

सकते हैं यह भक्ति मार्गीय शास्त्रों से सिद्ध है इसलिये उस दुःख में किसी प्रकार की चिन्ता करना उपयुक्त नहीं है।

यही ज्ञान कराने के हेतु देशकाल अवस्थादि भेद से माता का उत्कर्ष संपादन किया गया है वह सुखप्रद उत्कर्ष सात प्रकार का है (१) देश से, (२) काल से, (३) अवस्था से, (४) स्वतः से, (५) अन्य से, (६) द्रव्य से, (७) मान से [१] इन सातों प्रकार के सुखों से युक्त देवकीजी के होते हुवे भी आकाश वाणी द्वारा अचानक उनको महान् दुःख प्राप्त हुवा [२] तब उनके पति (वसुदेव) ने उसका (दुःख का) प्रतीकार प्रारंभ किया है उस प्रतीकार का वर्णन आगे नवें श्लोकों द्वारा कहा गया है [२½]

श्री सुबोधिनी

सप्त प्रकार के उत्कर्षों में प्रथम देश का उत्कर्ष कहा जाता है—पहले राजा शूरसेन शत्रुघ्न द्वारा निर्माण की गई मथुरा में वहां के आनन्द का उपभोग करते हुवे रहता था और वही यदुपति था। यादवों का राजा था। वह अपने नाम पर स्थापित किये गये शूरसेन नामक देश को छोड़ कर मथुरा में ही रहते हुवे दोनों प्रदेशों का उपभोग करने लगा इस प्रकार यादवों का स्वदेश मथुरा ही कहा जाता था॥ २७॥ (इस प्रकार देश से देवकी का उत्कर्ष कहा गया है) अब काल भेद से भी वह (देवकी) महान् थी ऐसा कहते हैं--

मू०—राजधानी ततः साभूत् सर्व यादव भूभुजाम्।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः॥ २८॥

अर्थः— जहां पर परम प्रभु श्री हरि नित्य निवास करते हैं ऐसी मथुरा संपूर्ण यादव नृपतियों की राजधानी हुई॥२८॥

श्री सुबोधिनी

इसके बाद में कंसपर्यन्त अपने पराक्रम से राजा होने वाले, खण्ड मण्डलाधिपति राजाओं को वहां (मथुरामें) अत्यन्त सुख प्राप्त होने से मथुरा ही उन सबकी राजधानी हुई और शूरसेन पर्यन्त संपूर्ण राजा यादव ही हुवे। जिसमे राजा निरंतर रहे एवं प्रसन्न रहे वह राजधानी कही जाती है अथवा जहां राजा का पट्टाभिषेक किया जाय, वह राजधानी कही जाती है। इससे वहां पर (राजधानी में) राजलक्ष्मी का स्थायी वास होता है एवं वहां रहनेवाले आनन्द पूर्वक रहते हैं इसमें कारण भगवत् सन्निधान है। (जहां लक्ष्मी का वास होता है वहां भगवान् अवश्य ही रहते हैं इस प्रकार राज्य लक्ष्मी के राज्य में रहने से, उस राजधानी में भगवान् का वास भी होता है तथा भगवत्संनिधान से राज्य निवासी भी आनन्द में ही रहते हैं)

कारिकाः—

सर्वतत्वेषु योविष्टः सभूमावपि सङ्गतः।
सनित्यंकचिदेवास्ति तत्स्थानं मथुरा स्मृता॥१॥

तत्र स्थित्वाद्वयं चक्रे सर्वेषां सकलं हितम् ।
सर्व दुःखनिवृत्तिं च तत्र चेद्दुःख सम्भवाः ॥२॥
प्रतीकाराः सर्व एव मर्यादा मार्ग सम्भवाः ।
व्यर्था जाता सर्वथेति ज्ञापनार्थं निरूपितम् ॥३॥

कारिकार्थः—

जो भगवान् तेवीस तत्त्वगण में एक ही साथ आविष्ट हुवे हैं; वे भगवान् निश्चय ही भूमि में भी आविष्ट हुवे हैं। और भूमितत्व में प्रविष्ट भगवान् किसी भी प्रदेश में अवश्य ही स्थित हैं; वैसे भगवान् सर्वत्र स्थित हैं किन्तु मथुरा नगरी उनका मुख्य स्थान है। [१] वहां पर (मथुरा में) स्थित होकर भगवान् ने दो कार्य किये हैं (१) सब का संपूर्ण हित (२) एवं यदि वहां दुःख उत्पन्न हो तो उसका विनाश; इस प्रकार किये हैं। [२]

(यदि प्रभु तिरोहित होते तो दुःखोत्पत्ति हो सकती है ऐसे समय में) मर्यादा मार्गीय संपूर्ण दुःख निवर्तक साधन व्यर्थ हो जाते हैं। (इसलिये उस दुःख के निवारण हेतु पुष्टि मार्गीय साधन ही) सूचित करने के लिये संपूर्ण प्रकार से निरूपण किया गया है। [३]

श्री सुबोधिनी

श्री रंग आदि धामों में भगवत्संनिधान है, किन्तु वहां पर ब्रह्माण्डविग्रह = ब्रह्माण्ड ही जिनका शरीर है ऐसे नारायण भगवान् का सांनिध्य है। (श्री रंग आदि धाम में भगवान् के अंग प्रविष्ट हैं एवं यहां मथुरा में स्वयं भगवान् अंगी ही प्रविष्ट हैं)

कारिका—

देशकालादि मध्यस्थः षडङ्गत्वं य आगतः ।
सोन्यत्र सर्वदेशेषु शालिग्रामादिषु स्थितः ॥४॥

कारिकार्थ—

देशकालादि छः धर्म के अंगों में स्थित रहने वाले जो भगवान् वे छः प्रकार के अंग रुप हैं; वे भगवान् तीर्थादि में एवं अन्यत्र शालिग्रामादि में स्थित हैं। वे भगवान् निरंतर समीप में ही हैं। [४] ॥२८॥

अब आगे अवस्था से देवकी का उत्कर्ष कहते हैं—

मू०—तस्यांतु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥

अर्थ— एक समय उस मथुरा नगरी में जिसका विवाह संस्कार होगया है ऐसे शौरि वसुदेव (शूर के पुत्र वसुदेव) ने अपनी नवविवाहिता वधू देवकी के साथ अपने घर जाने के लिये रथ में प्रवेश किया ॥२९॥

श्री सुबोधिनी

मूल श्लोक स्थित "तु" शब्द यह सूचित करता है कि—देवकीजी का यह सुख दुःख में परिवर्तित हुवा अतः यह सुख भगवत्कृत नहीं है; अथवा भगवान् ने अपने प्रादुर्भाव के लिये सर्वतः संपूर्ण अन्शों को आकर्षित किया है; ऐसा "तु" शब्द का भाव समझिये।

मूल स्थित "कर्हिचित्" (किसी समय में) शब्द यह प्रकट करता है कि अच्छे मुहूर्तादिसे रहित ऐसे समयमें; "शौरिवसुदेव=शूर" का पुत्र वसुदेव (वसुदेव नामके व्यक्ति बहुत हैं अतः वसुदेवके साथ "शौरि" पिता के नाम का प्रयोग किया गया है तथा केवल "शौरि" का ही प्रयोग नहीं करते हुवे साथ में "वसुदेव" कहने का यह प्रयोजन है कि केवल "शौरि" कहने में वसुदेव के अन्य भ्राताओं का भी बोध होता है अतः "शौरि वसुदेव" ऐसा कहा है) ने अपनी नवविवाहित वधू देवकी के साथ श्वसुर द्वारा दिये गये रथ में अपने घर जाने के लिये आरोहण किया।

स्त्रियों के लिये पति का सामीप्य एवं विवाहोत्सव उत्तम अवस्था है। देवकी नवविवाहिता है अतः यह स्वतः ही उत्कर्ष कहा गया है; एवं पतिव्रताओं के लिये पति का प्राधान्य यह भी उत्कर्ष का कारण है। यद्यपि देवक राजा (देवकी का पिता) बड़ा था; किन्तु यहां पर मर्यादा से राज्य नहीं होता था यह राज्य तो पुष्टि राज्य था भगवत्कृपा से राज्य होता था इसीलिये उग्रसेन अथवा कंस वहां का राजा था ॥ २६ ॥

(इस उपर्युक्त मूलश्लोक में देवकी का अवस्था से उत्कर्ष कहा जाकर बाद में श्लोक के उत्तरार्ध में स्वतः उत्कर्ष कहा गया है)

लोक व्यवहार में सम्बन्ध हेतु मुख्य माना गया है। इसीलिये उग्रसेन के पुत्र कंस ने देवक की पुत्री देवकी के साथ भ्रातृ कार्य पूर्ण किया है। यह आगेके श्लोक द्वारा कहा जाताहै—

मू०— उग्रसेन सुतः कंस स्वसुः प्रियचिकीर्षया।
रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥

अर्थः— सुवर्ण के साजों से सज्जित सैकड़ों रथों से घिरे हुवे उग्रसेन के पुत्र कंस ने बहन को प्रसन्न करने के हेतु अथवा बहन के प्रिय करने की इच्छा से घोड़ों की लगामों को पकड़ी ॥३०॥

श्री सुबोधिनी

अपनी बहन देवकी के सम्मान रूप प्रिय कार्य के हेतु कंस ने स्वयं घोड़ों की रश्मियों को पकड़ी, अर्थात् उसने सारथि का कार्य किया। कंस की प्रतिष्ठा का निरूपण करने के हेतु विशेषण कहे गये हैं। सुवर्ण के साजों से सुसज्जित सैकड़ों रथों से कंस घिरा हुवा था; इससे ज्ञात होता है कि कंस ने वसुदेव को ही मुख्य राजा बना दिया था एवं स्वयं दास भाव को प्राप्त हुवा था यह देवकी का महान् सम्मान है। इस प्रकार अत्यन्तः उत्कर्ष कहा गयाहै।३०।

अब आगे पिता द्वारा द्रव्य से किये उत्कर्ष का वर्णन दो श्लोकों द्वारा किया जाता है—

मू०—चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते ।
दुहित्रे देवकः प्रादात् यानैःर्दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सुवर्ण की मालाओं से सज्जित चार सौ हाथी, पंद्रह हजार अश्व, अठारह सौ रथ, एवं अलङ्कारों से अलंकृत ऐसी दो सो सुकुमार दासियां वाहन सहित दुहितृ वत्सल राजा देवक ने अपनी पुत्री देवकी को प्रदान की । ३१ । ३२ ।

श्री सुबोधिनी

क्षत्रिय राजा लोग विवाह में वर-वधू के संतोष के हेतु चतुरंगिणी सेना देते हैं । देवकी के पिता ने पैदल सैनिक के स्थान पर कन्या को संतुष्ट करने के हेतु दासियां दीं एवं स्वर्ण की माला से भूषित ऐसे हाथी तथा पंद्रह हजार अश्व और अठारह सौ रथ प्रदान किये थे ॥ ३१ ॥

वे दासियां देवकी की सखियां थी यह सूचित करने के हेतु मूल श्लोक में "दासीनां सुकुमारीणां द्वेषते समलंकृते" (दो सो सुकुमार अलंकारों से अलंकृत दासियां) इस प्रकार कहा गया है । ये दासियां केवल कन्या को ही दी गई थी न कि—देवकी के पति वसुदेव के लिये दी गई हों ।

अतः वसुदेव उनका यथेष्ट विनियोग नहीं कर सकते हैं ।

यहां शंका होती है कि देवकी के ही विवाह में राजादेवक ने इतना क्यों दिया ? देवकी का पिता राजा देवक देव है और वह जानता है कि यहां श्री प्रभु का अवतार होगा अतः उसने इतना अधिक दहेज दिया है । वे दासियां भी यान-वाहन, दोला सहित दी गई हैं उनको इस प्रकार से देने का कारण यह है कि राजा दुहितृवत्सल [कन्याओं पर प्रेम रखने वाला] है । उन दासियों को भी अपनी पुत्री के समान मानकर इतना दिया है अथवा देवकी के कथन से इतना दिया है ॥ ३२ ॥

अब आगे सम्मान कहते हैं—

मू०—शंखतूर्यमृदङ्गानि नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।
प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमंगलम् ॥३३ ॥

अर्थ—प्रयाण के समय में वर एवं वधू उभय का सुमंगल हो इसलिये शंख, तूरी, मृदंग और दुन्दुभियां एक साथ ही नाद करने लगी ॥३३॥

शंख मुख वाद्य है । तूरी एवं मृदंग हाथ से बजाये जाने वाले वाद्य हैं । दुन्दुभियां दण्डे से बजाई जाती हैं । ये सब एक समय में एक साथ ही बजे हैं । कारण कहते हैं कि-वर एवं वधू की बिदाई के समय में जिस प्रकार दोनों का सुमंगल हो उसी प्रकार बजाये गये हैं । इसमें शकुन भी कहा गया है कारण कि मंगल वाद्यों का पर्यवसान उत्तम ही है ॥३३॥

काल यहां पर प्रतिबन्धक है। यह सूचित करने के हेतु उस काल का आधिभौतिक स्वरूप कालनेमि कंस में प्रविष्ट है अतः उसके [काल के] प्रकट होने के हेतु वाग्देव कंस के अनुकूल होते हुवे भी उसका [काल का] उत्कर्ष सहन नहीं कर सकने के कारण अकस्मात् अशरीर वाणी [आकाश वाणी] उत्पन्न हुई—

मू०—पथि प्रग्रहिणं कंसमाभष्याहशरीरवाक्।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां नससेबुध ॥ ३४ ॥

अर्थ—घोड़ों की रश्मियों को पकड़कर जाने वाले कंस को सावधान करके मार्ग में अशरीर वाणी [आकाश वाणी] ने कहा कि—हे अबुध [मूर्ख] जिसको तू ले जा रहा है उसका आठवां गर्भ तुझे मारेगा ॥३४॥

श्री सुबोधिनी

—यह अत्यंत शोभा का विषय है कि आकाशवाणी घर पर अथवा गमन के बाद में [वसुदेव के घर पहुँचने के बाद] उत्पन्न नहीं होकर यहां मध्य मार्ग में ही उत्पन्न हुई। इसके द्वारा यह समझना चाहिये कि आधिभौतिक काल इस मार्ग में [पुष्टिमार्ग में] बाधक है अतः उसका निवारण करना चाहिये। अच्छी प्रकार से घोड़े की रश्मियों को पकड़ने वाले कंस को—अरे कंस, अरे कंस, इस प्रकार कह कर सावधान करनेवाली अशरीर (शरीर से नहीं) से उत्पन्न होने वाली अर्थात् तालु एवं ओष्ठपुष्ठ से नहीं किंतु आकाश से उत्पन्न होनेवाली अशरीरवाग् हुई। उसके वाक्य कहते हैं कि—इस देवकी का अष्टम गर्भ तुझे मार डालेगा। इस प्रकार संशय रहित निश्चित संख्या कही किन्तु पुत्र होगा अथवा कन्या ऐसा स्पष्ट नहीं कहा है कारण कि मध्यमें भगवान् ने ऐसी ही प्रेरणा की है कि—वह बालक ही तुझे मार डालेगा।

यह मारने वाला गर्भ दासियों में से अथवा देखने वाली स्त्रियों में से किसी का होगा? इस शंका के निवारणार्थ मूल श्लोक में कहा है कि 'तू जिसको साथ ले जा रहा है' उसी का बालक तुझे मारेगा। तू यदि यह सोचता है कि यह मेरी बहन ऐसा नहीं करने देगी तो तू मूर्ख है। इसी हेतु को लेकर मूल शलोक में 'अबुध' [मूर्ख] कहा गया है। तू किसी के भी तत्व को नहीं जानता है। हे अबुध! इस प्रकारका संबोधन तेरा हित बताने के लिये किया गया है ॥३४॥

इसके बाद जो हुवा वह कहते हैं—

मू०—इत्युक्तः सखलः पापो भोजानां कुलपांसनः।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेग्रहीत् ॥३५॥

अर्थ—आकाशवाणी के इतना कहने पर—भोजकुल में कलंकरूप पापात्मा उस कंस ने देवकी के केश पकड़ कर हाथ में खड्ग लेकर अपनी बहन को मारने लगा ॥३५॥

श्री सुबोधिनी

आकाश वाणी के कथन में अभिप्राय यह था कि देवकी को अपने घर में रखना अथवा प्रसंग आने पर कुछ करना। किन्तु कंस तो इतना आकाशवाणी के कहने पर ही मारने को तैयार हो गया कारण कि वह दिग्विजयी होने से स्वभाव से ही खल था एवं उसमें कालनेमि का आवेश था, अतः उसने बहन को मारने के हेतु एक हाथ में खड्ग लेकर दूसरे से उसके (देवकी के) केशों को पकड़ा था। यहां शंका है कि ऐसा बड़ा पाप वह कैसे करेगा? किंतु कंस तो निरंतर पाप करते रहने से पापात्मा हो गया था। अतः उसको शास्त्र से कोई बाधा नहीं थी एवं खल था अतः लौकिक से भी नहीं उतरता था और अपने वंशजों से भी उसका बाधा नहीं थी कारण कि मूल श्लोक में "भोजानां कुल पांसना" [भोजकुल में कलंकरूप] कहा है। कुल में कलंक उत्पन्न करना यही उसका स्वरूप है अतः कुल सम्बन्धी विचार भी उसको नहीं रोक सका। वह कालवश ही अपनी बहन को मारने के लिये तैयार हुवा एवं वह भाग नहीं जाय इसलिये उसके केशों को पकड़ा ॥३५॥

वसुदेव शूर होते हुवे भी असहाय थे और कंस के बल को जानते थे एवं यह कंस का स्वतः का दोष नहीं है ऐसा निश्चय करके उसको शांत करने के हेतु प्रवृत्त होकर बोले—

मू०—तं जुगुप्सित कर्माणं नृशंसं निरपत्रपम्।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

अर्थ—उस निन्दित कर्म करनेवाले, क्रूर एवं निर्लज्ज कंस को महाभाग्यवान् वसुदेव सान्त्वन करते हुवे बोले ॥३६॥

श्री सुबोधिनी

वसुदेव स्त्री के लोभ से इस प्रकार कंस का सान्त्वन करने लगे ऐसा नहीं किन्तु कंस जो कार्य कर रहा है यह अनुचित है ऐसा सोच कर दया पूर्ण होकर सान्त्वना करने लगे हैं। यहां शंका होती है कि कंस लज्जा से स्वयं ही ऐसा कार्य नहीं करेगा? इसके लिये कहते हैं कि कंस हमेशा निन्दित कर्म करता है। एवं दयावश होकर अपनी बहन को छोड़ देगा ऐसा भी नहीं कारण कि वह क्रूरात्मा है एवं दैत्यों में भी वह हीन है अतः वह अत्यंत ही निर्लज्ज है। वसुदेव के जन्म के समय में आनक एवं दुन्दुभि नामक वाद्य देवों ने बजाये थे अतः वे महाभाग्यवान् भी थे और इसीलिए मूलश्लोक में वसुदेव को "महाभाग" इस विशेषण से विभूषित किया है ॥ ३६ ॥

वसुदेवजी ने आकाश वाणी सुनकर यह निश्चय करके कि यह [देवकी] मारी नहीं जा सकेगी किन्तु कैसे भी इसका प्रतिकार करना आवश्यक है ऐसा निश्चय कर प्रतियुद्धादि नहीं करते हुवे कंस को सब प्रकार सान्त्वना देते हुवे कहने लगे—ठहरो! ठहरो! मेरी प्रार्थना तो सुनो! इस प्रकार कहते हुवे आकाश वाणी द्वारा कहा हुवा; उसके समाधान के हेतु कहने लगे। आकाश वाणी द्वारा कहा गया झूठा नहीं होता है, और यह [कंस] उसका [आकाश वाणी का] प्रतिकार करने की कोशिश कर रहा है। इसका [कंसका] प्रतिकार क्रिया द्वारा नहीं हो सकता है अतः ज्ञान द्वारा ही इसका प्रतीकार करना चाहिए ऐसा सोचकर वसुदेव नव श्लोकों द्वारा उसको संपूर्ण तत्व का उपदेश देते हैं।

क्रमशः

मुद्रकः—सी. एम. शाह, मॉडर्न प्रिन्टरी खजूरी बाजार, इन्दौर.